ISSN 2815-8326
9 772815 832008

हिंदी त्रैमासिक

पहचान

देश से हम, हमसे देश

वर्ष 4, अंक 2, अक्टूबर-दिसंबर 2025, पृष्ठ संख्या 32
प्रधान संपादक: प्रीता व्यास

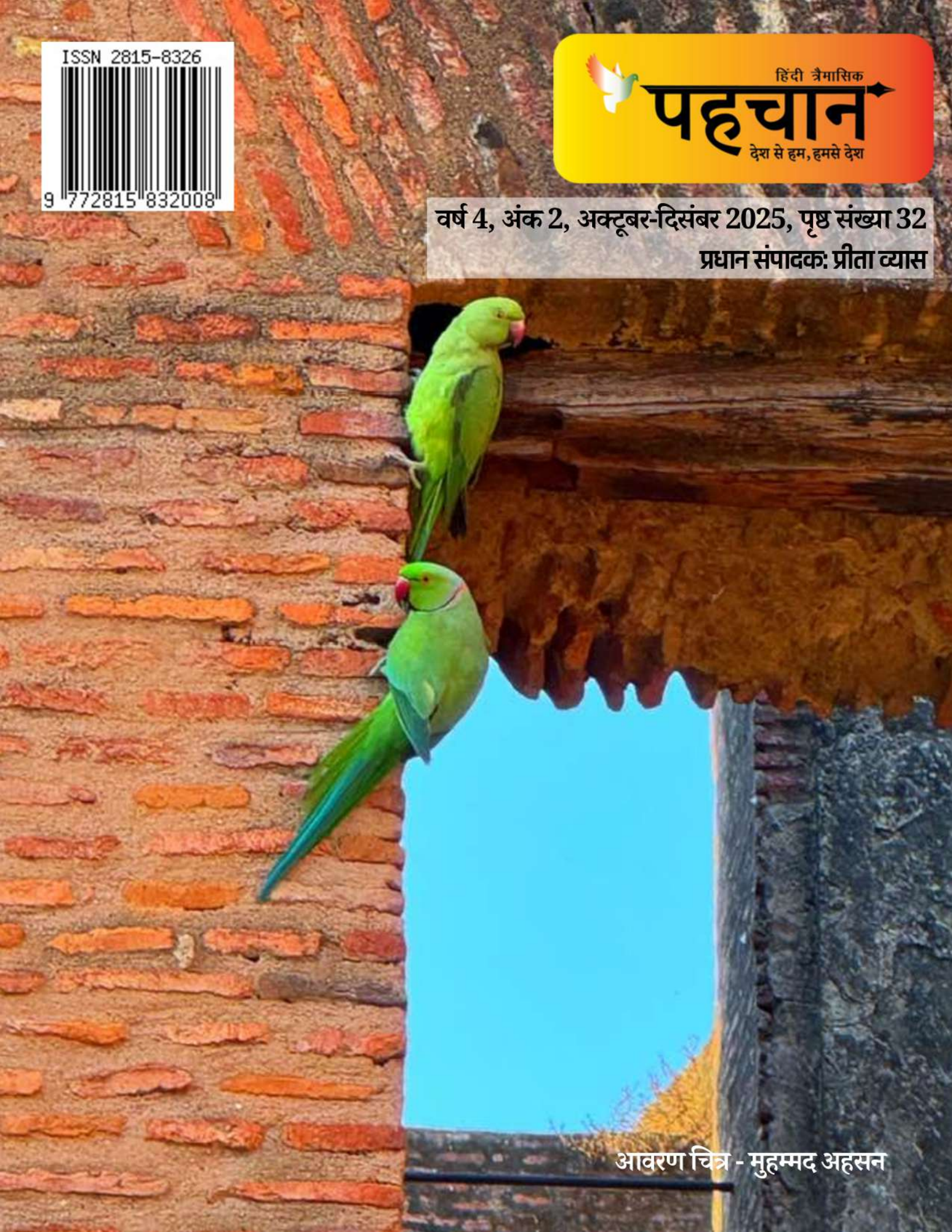

आवरण चित्र - मुहम्मद अहसन

उम्मीद

सूरज कहता है
जब पृथ्वी मुझसे मुँह मोड़ रही हो
तुम मुझे याद करना
मेरी बात करना
बात करना रौशनी की
जब हर तरफ़ अंधेरा हो

जब काटे जा रहे हों हाथ और पैर
ठीक उसी वक्त
जुट जाना अगले सफ़र की तैयारी में
कि टहनियों और तने का कट जाना
पेड़ की मृत्यु नहीं होती

और जब बोलने की मनाही हो
ठीक उसी वक्त
गुनगुनाना
कि धुनों को शब्दों की ज़रुरत नहीं

भीड़ के लिए ज़रूरी है
बस तुम्हारा अकेले चल पड़ना।

शब्द - शेफाली शर्मा

रंग - रोहित रुसिया

हिंदी त्रैमासिक
पहचान
देश से हम, हमसे देश

संस्थापक/ प्रधान संपादक
प्रीता व्यास

सलाहकार संपादक
रोहित कृष्ण नंदन

ले आउट / ग्राफ़िक्स
प्रिया भारद्वाज

कवर पेज
मुहम्मद अहसन

प्रकाशक
पहचान

आकलैंड, न्यूज़ीलैंड

editor@pehachaan.com

डिस्क्लेमर

पत्रिका में प्रकाशित लेख, रचनाएं, साक्षात्कार लेखकों के निजी विचार हैं, उनसे प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं. रचनाओं की मौलिकता के लिए लेखक स्वयं ज़िम्मेवार है. कुछ चित्र और लेखों में प्रयुक्त कुछ आंकड़े इंटरनेट वेबसाइट से संकलित किए गए हो सकते हैं.

दो शब्द

साल 2025 की विदा बेला समीप आ गई. उथल-पुथल भरा साल रहा. आपदाओं वाला साल रहा. भूकंप. आग, बाढ़ सब कुछ रहा. प्रकृति के रौद्र रूप के दर्शन किये सबने. जीवन हानि के साथ ही साथ ऐतिहासिक मूल्य की धरोहरों को भी खोया हमने इन आपदाओं में. ईश्वरीय विधान की विशिष्टता यही है कि कुछ भी चिर-स्थाई नहीं है. सब कुछ बीत जाता है- अच्छा भी, बुरा भी. बीतते हुए समय के साथ हम घटाओं से सबक लेते चलें, सीखते चलें ये ज़रूरी है. प्रकृति का बहुत गैर जिम्मेदारना तरीके से फायदा उठाया है हमने अब उसके प्रतिफल का समय है.

संस्कृति और प्रकृति ये दोनों ऐसे ध्रुव हैं जिनका रक्षण मानवता के जीवन के लिए और जीवन की समग्रता के लिए आज अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया है. हम समय के उस सिरे पर खड़े हैं जिसके आगे, अगर अब ना सम्भले तो, गहरा गर्त है. सांस्कृतिक अवमूल्यन को भी आधार की ज़रुरत है और क्लामेट चेंज जैसे खतरे को भी हमारी सक्रिय पहल की ज़रुरत है.

एक पत्रिका के माध्यम से हम इसी प्रयास में हैं कि इन दोनों ध्रुवों की गरिमा को, गौरव को बनाये रखने में शब्द- सहयोग पहुंचाते रहें. पहचान के चौथे वर्ष का दूसरा अंक है ये. उम्मीद है इसमें निहित सामग्री पाठकों को सिर्फ रोचक ही नहीं ज्ञानवर्धक और संग्रहणीय भी लग रही होगी. अपने पाठकों का और अपने रचनाकारों का हम आभार व्यक्त करते हैं जिनकी बदौलत "पहचान" एक पहचान बनाती जा रही है.

आपका साथ हमारी शक्ति है. जुड़िये, जुड़े रहिये और अन्य लोगों को भी "पहचान" से जोड़िये.

प्रीता व्यास

इस अंक में ...

पाठकीय प्रतिक्रियाएं 5

आलेख

बघेली लोक साहित्य में जाड़ा (बाबूलाल दाहिया) 6
संस्कृत 'मृत-भाषा' नहीं है (कुमार पंकज) 7 - 9
गौतम बुद्ध (राजेंद्र रंजन चतुर्वेदी) 10

कहानी

दोस्त (मनीष कुमार सिंह) 11 - 13

व्यंग्य

कष्ट-कथा (आनंदवर्धन ओझा) 14 - 16

कविता

कन्या (तूलिका मिश्र) 17
कछुए और तितली का रिश्ता (पल्लवी त्रिवेदी) 18
क्या है तुम्हारे पास?(बाबुषा कोहली) 19
चांद के मन की बात (नीता पोरवाल) 20
माइक्रोफ़ोन के अंदर भी होती है आंख (अनु चक्रवर्ती) 21
'स्वयं' होना (मालिनी गौतम) 22

धरोहर

नर्मदा का नाभिकेंद्र - नेमावर (रूपेश उपाध्याय) 23

ग़ज़ल

अलीना इतरत 24
मुमताज़ अज़ीज़ नाज़ां 25
नफ़स अंबालवी 26
जावेद उल्फ़त 27
अनुवाद - कमलजीत चौधरी 28
बालकविता- ओ ! नटखट गौरैया
(श्याम सुंदर श्रीवास्तव 'कोमल') 29
बाल कविता- मुगल पसारना (पंकज चतुर्वेदी) 30
पुस्तक समीक्षा - (समीक्षक: दीपक गिरकर) 31

मैम आपकी पत्रिका के सभी अंक पढ़ती हूं. कृपया फिर से एक ग़ज़ल विशेषांक निकालिये ना.

ऋतु त्यागी, आस्ट्रेलिया

आहाहा, कवर पेज, बिलकुल जुड़ता है जी अपनी पहचान से. आपकी पत्रिका का नाम तो इसके कवर पेज से ही सिद्ध हो जाता है. सभी रचनाएं स्तरीय, सुंदर साज-सज्जा. पूरी टीम को साधुवाद.

दर्शन बहाना, न्यूज़ीलैंड

धीरेन्द्र प्रताप सिंह की हिंदी भाषा से जुडी जानकारी बहुत उपयोगी लगी. किस तरह अनुस्वार का प्रयोग करना है ये जानना बहुत आवश्यक है. मैं स्कूल में हिंदी सिखाती हूं , मेरे लिए भी ये जानकारी उपयोगी है.

रेखा कुमार, फिजी

हिंदी में अनेक पत्रिकाएं हैं इस समय लेकिन उनमें से कुछ हैं जो अपनी सीमाओं में महत्वपूर्ण कार्य कर रही हैं, "पहचान" निःसंदेह इनमे से एक है. मुझे इसके लेख और अन्य सामग्री प्रभावित करती है. बहुत सी ऐसी अच्छी और महत्वपूर्ण पत्रिकाएं कुछ ही वर्षों के प्रकाशन के बाद बंद भी हो गईं जो दुर्भाग्यपूर्ण है. मैं "पहचान" के दीर्घजीवी होने की कामना करता हूं.

नरोत्तम भार्गव, भारत

आपकी पत्रिका के सभी अंक सजीले हैं, इसके अलावा मैंने वेबसाइट भी देखी, बहुत आकर्षक है. पर्यावरण से जुड़ा लेख अंग्रेजी में वहां नज़र आया. ये एक अच्छा विचार है. मुझे इस इंग्लिश ब्लॉग की भी प्रतीक्षा रहेगी.

विनय आहूजा, सिंगापुर

पत्रिकाएं रचनाकारों के एक ख़ास वर्ग तक सीमित नहीं होना चाहिए, आजकल ज़्यादातर पत्रिकाएं यही कर रही है, ऐसे में ये पत्रिकाएं कम और किसी ख़ास वर्ग का मुख-पत्र ज़्यादा लगती हैं और बड़ी निराशा होती है इन्हें देख कर. आपकी पत्रिका सोच के स्तर पर ईमानदार पत्रिका है. शुभेच्छा.

राजू कनौजिया, भारत

मेरी हिंदी उतनी अच्छी नहीं है लेकिन ये पत्रिका पढ़ती हूं और सीखने की कोशिश करती हूं, बहुत से नए शब्द सीखे हैं मैंने. बहुत धन्यवाद मैम. पत्रिका को चालू रखिये, हम लोग सीखते हैं इससे. कभी कठिन हिंदी होती है तो अटक-अटक कर पढ़ पाते हैं.

सुहानी मित्रा, न्यूज़ीलैंड

बघेली लोक साहित्य में जाड़ा

बाबूलाल दाहिया

वैसे तो ठंड नवंबर में धीरे-धीरे ही आती है पर कश्मीर में बर्फवारी के कारण इस वर्ष बीस-बाईस नवंबर से ही 10-11 डिग्री में पहुंच कर अपनी औकात दिखाने लगी है. हमारी बघेली मौखिक परंपरा में जाड़े पर अनेक कहावतें पाई जाती हैं. किसी लोक रचनाकार ने तो जाड़े के मुंह से ही हम सत्तरोत्तर वालों के लिए यह चौबोलवा कहलवा दिया है कि-

"लड़कन से बोलव नही, ज्वान मोर भाई,
बूढ़न का छोड़व नही, चाह ओढ़य रजाई."

यद्दपि अब लोगों के पास ओढ़ने- बिछाने के लिए पहले की अपेक्षा पर्याप्त कपड़े हैं. परंतु प्राचीन समय में जब अक्सर ग्रामों की दशा मुंसी प्रेमचंद की कहानी (पूस की रात) जैसी रहती थी और सथरी हेतु जमीन में कोदो का पुआल तथा ओढ़ने के लिए भेड़ के बाल के देसी कंबल और कथरी से ही जाड़ा कटता था तब कंबल पर कई कहावतें थीं. एक कहावत थी कि-

"जे जानय कंबल का भेद, वा मूंदय कंबल के छेद."

यानी कि अगर कंबल के बुनाई के बीच के छिद्रों को किसी चद्दर से ढक दिया जाय तो फिर कंबल ओढ़ने वाले को जाड़ा नहीं सताता? पर एक कहावत तो इस प्रकार अतिशयोक्ति पूर्ण भी रची गई थी जिसमें कहा गया है कि "अगर कंबल के ऊपर पिछौरी (चद्दर) डाल ली जाय तो जाड़ा चिरौरी (विनती) करने लगता है-
"कंबल ऊपर सटय पिछौरी, जाड़ बिचारा करय चरौरी."

इस तरह हमारे बघेली लोक साहित्य में अनेक कहावतें एवं लोक कथाएं इस जाड़े के ऊपर पाई जाती हैं. कहते हैं जाड़े में किसी मेहमान का घर आ जाना उस जमाने में उसके लिए किसी आफत से कम नहीं हुआ करता था. शायद इसीलिए कहा गया रहा होगा कि-
"जाड़े मा बइरिउ घरय आमय न मेहमान" यानी जाड़े में तो दुश्मन के घर भी मेहमान ना आए.

यही कारण था कि उस जमाने में मेहमानों को अगर दस- बीस कोस की पैदल यात्रा करनी पड़ती तो बीच में कहीं रुकना अवश्य पड़ता था. परंतु वह किसी के मोहताज होने के बजाए अपने साथ पीठ पर एक रजाई अथबा पिछौरी सहित कंबल बांध कर ही चलते थे. फिर भी एक पहेली के अनुसार एक मेहमान बगैर रजाई कंबल के ही रिस्तेदार के घर पहुंच ही गए. उस गृहस्थ ने भोजन तो दिया और जमीन में नीचे बिछाने के लिए कोदो के पुवाल की सथरी भी दी परंतु छः सदस्यीय परिवार में ओढ़ने के लिए मात्र तीन कथरी और एक कंबल ही था.

उस परिवार के बूढ़े पिता एक कंबल ओढ़ते, एक कथरी को उसकी मां और गृहस्थ की बड़ी बेटी लाही ओढ़ती. साथ ही एक को पत्नी और उसकी छोटी बेटी लूही ओढ़ लेतीं तथा एक कथरी वह खुद ओढ़ता. भोजन तो कराया पर भोजनोपरांत समस्या यह आई कि "मेहमान को क्या ओढ़ाया जाय?" जब उनकी समझ में समस्या का निदान न आया तो बहू ससुर के समीप जाकर बोली कि "दद्दा घर में तो तीन कथरी और आप वाला कंबल ही है, इन मेहमान को क्या ओढ़ाया जाय?"

बूढ़े तो अनुभव जनित ज्ञान की चलती-फिरती लाइब्रेरी होते हैं. उन्होंने एक ही पहेली नुमा कहावत में समस्त समस्या सुलझा दी कि -

"लाही लूही एकय साथ,
लाठ क लूमर तोरे साथ.
तोर सास ता मोरे साथ.

अर्थात, एक कथरी को लाही और लूही दोनों बेटियां ओढ़ लेंगी. एक को तुम दोनों ओढ़ लेना और एक को मैं और तुम्हरी सासू ओढ़कर इस आसन्न संकट से निजात पा लेंगे. अब बचा मेरा वाला कंबल तो उसे मेहमान को दे देना.
दो-तीन दिन से पड़ रहे जाड़े ने कहावतें याद करा दीं.

संस्कृत 'मृत-भाषा' नहीं है

कुमार पंकज

लगभग पांच हज़ार साल पुरानी "संस्कृत लोरी" जिसे अपने समय की सबसे बुद्धिमान स्त्रियों में से एक ने अपने पुत्र "विक्रांत" को सुलाते समय गाया, आज भी भारत में ताड-पत्रों पर लिखी एक पांडुलिपि में सुरक्षित है. यह मां, विश्वावसु की पुत्री और राजा कुवलयाश्व की पत्नी, रानी 'मदालसा" थी. संस्कृत में लोरी को "स्वापिका" या "आलोलिका" कहा जाता है. संस्कृत के लगभग डेढ़-दो हज़ार साल पुराने, 'सुबंधु' रचित एक अद्भुत प्रेमग्रंथ 'वासवदत्ता' में उल्लेखित है-"आलोलिका शिशुरोदनशान्त्यर्थ कृतः अव्यक्ततालुरवः हेलिकेति लोके प्रसिद्धः", अर्थात ऐसा गीत जिसे रोते हुए शिशु को चुप कराने या सुलाने के लिए मां द्वारा गाया जाता है. इस विलक्षण लोरी की ध्वन्यात्मकता, गीतात्मकता, प्रवाह, पवित्रता, आरोह-अवरोह, शिशु से संवाद, सब एकदम मुग्ध करने वाला है. ये पांडुलिपि है ताड़-पत्रों पर लिखित प्राचीनतम मार्कंडेय पुराण की. पूरी लोरी पढ़िए-

शुद्धोऽसि रे तात न तेऽस्ति नाम कृतं हि ते कल्पनयाधुनैव।
पच्चात्मकं देहमिदं तवैतन्नेवास्य तवं रोदिषि कस्य हेतो॥
हे पुत्र! तू शुद्ध है, तेरा कोई नाम नहीं है. चूंकि तूने पश्चात्मक देह धारण की है, इसलिए तेरा नाम कल्पित किया गया है. तू किसलिए रोता है?
न वा भवान् रोदिति वै स्वजन्माशब्दोऽयमासाध्य महीशसूनूम्।
विकल्पयमाना विविधागुणास्तेऽगुणाश्च भौताः सकलेंद्रियेषु॥
अथवा ये कहना चाहिए कि तुम रोते भी नहीं हो, यह रोने का शब्द स्वयं ही उत्पन्न होता है. संपूर्ण इन्द्रियों के जो गुण-अवगुण हैं, वे भी तुम्हारे संकल्प से ही हैं.
भूतानि भूतैः परिदुर्बलानि वृद्धिं समायान्ति यथेह पुंसः।
अन्नाभ्युदानादिभिरेव कस्य न तेऽस्ति वृद्धिर्न च तेऽस्ति हानिः॥
मनुष्य की देह अन्न-जल आदि ग्रहण करने से बढ़ती और ऐसा न करने से घटती है. परंतु इससे न तो तुम्हारी वृद्धि है और न ही हानि.
त्वम् कँचुके शीर्यमाणे निजेस्मिंस्तस्मिश्च देहे मूढतां मा व्रजेथाः।
शुभाशुभैः कर्मभिर्देहमेतन्मदादिमूढैः कंचुकस्तेऽपि नद्ध
इस रचे हुए अपने शरीर में मूढ़ता मत करो. यह देह शुभाशुभ कर्मों का फल है तथा मदादि मूढ़ओं से बंधा हुआ है.
तातेति किंचित् तनयेति किंचिदम्वेती किंचिद्धयितेति किंचित्।
ममेति किंचिन्न ममेति किँचित् त्वम् भूतसंघं बहु मानयेथाः॥
यह पिता है, यह पुत्र है, यह माता है, यह स्त्री है, यह मेरा है और यह मेरा नहीं है, इस भूतसंघ को तुम मानते हो
दुखानि दुःखोपशमाय भोगान् सुखाय जानाति विमूढचेताः।
तान्येव दुःखानि पुनः सुखानि जानाति विद्धनविमूढचेताः॥
मूर्ख लोग दुखों को तथा दुखों का नाश करने वाले भोगों को सुख मानते हैं. वास्तव में उसी एक वस्तु को अज्ञानी लोग दुःख और सुख कह देते हैं."

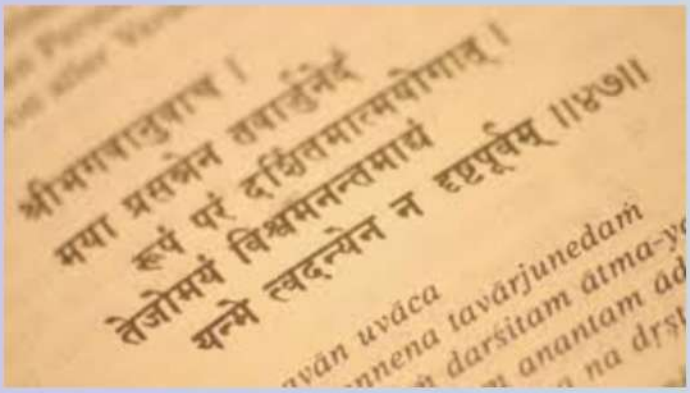

संस्कृत में प्रेम-गीतों की एक अद्भुत परंपरा रही है. वस्तुत: संस्कृत 'चरम गेयता' का ही दूसरा नाम है. 'गीता' शब्द का अर्थ भी "गाई हुई कथा' है. भारत के सारे प्राचीनतम शास्त्र, गीतात्मकता ही हैं. अगर वेदों को प्राचीनतम मानें तो दुनिया का सबसे पहला प्रेम-संदेश संस्कृत में ही भेजा गया, जिसका उल्लेख, ऋग्वेद के पांचवें मंडल में वर्णित सूक्त 61 में "श्वावाश्व' द्वारा राजा 'दार्भ्य" की पुत्री के लिए भेजे गए प्रणय-संदेश के रूप में मिलता है. या फिर एक और प्रेम-काव्य का उदाहरण भागवत पुराण के "वेणु गीत" के रूप में देखा जा सकता है. पढने वाला डूब ही जायेगा.

जहां तक प्रेम गीत या प्रेम-काव्य का प्रश्न है ये सागर इतना विशाल है कि 'बुद्धि का अजेय टायटेनिक' इसके किसी भी शिलाखंड से टकराकर हमेशा के लिए डूब जायेगा. ज्यादा पीछे न जाकर यदि कालिदास से भी शुरू करें तो अद्भुत प्रेम-गीति-काव्यों की एक लंबी सूची है-
मेघदूत--कालिदास, ऋतुसंहार-कालिदास, नेमिदूत-विक्रम, भ्रमरदूत-रुद्रवाचस्पति, कोकिल-सन्देश-वेंकटाचार्य, घटकर्पर काव्यम-घटकर्पर, गीतगोविन्द-जयदेव, गीतगिरीशं-रामभट्ट, गीत गौरीश-भानुदत्त मिश्र, गीत-गंगाधर-कल्याण, गीत पीतवसन-श्यामराम.

संस्कृत में सब्जी बेचना सुनने में मनोरंजक लग सकता है मगर एक दिलचस्प बात ये है की 'व्यापारी' के लिए जिस "सेठ' शब्द का प्रयोग किया जाता है वो संस्कृत से "श्रेष्ठि" का अपभ्रंश रूप है जो " सेट्ठि" से होते हुए सेठ हो गया. प्राचीन संस्कृत अभिलेखों में व्यापारियों के संघ के लिए प्राय: 'नैगम' शब्द का प्रयोग हुआ है. वृहत्कल्पसूत्र भाष्य में 'निगम' लेन-देन का काम करने वाले व्यापारियों की बस्ती के अर्थ में आता है. वैशाली से प्राप्त चौथी शताब्दी के अंत की कुछ मुद्राएं श्रेष्ठि, सार्थवाह और कुलिकों के निगम की हैं. व्यापारियों और कारीगरों के संघ के लिए स्मृतियों में अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं- श्रेणी, पूग, गण, व्रात, संघ और नैगम. जैन ग्रंथ 'प्रश्न व्याकरण' और 'जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति' में श्रेणी के रूप में संगठित व्यवसायों और शिल्पों की संख्या, 18 बतलाई गई है. महावस्तु में भी ऐसी अनेक श्रेणियों के नाम गिनाए गए हैं. व्यापारी जिस "तुला" से तौलता है वो भी संस्कृत की ' तुल् " धातु से बना है जिसका अर्थ है "परिमाण मापना" इसी से फिर 'समतुल्य' जैसे शब्द बनते हैं. मनुस्मृति के 8 वें अध्याय के 403 वें श्लोक में कहा गया है-

तुलामानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात् सुलक्षितम्।
षट्सु षट्सु च मासेषु पुनरेव परीक्षयेत्॥
"राजा को प्रति छ: माह पश्चात् भारों (बाटों) तथा तुला (तराजू) की सत्यता सुनिश्चित करके राजकीय मुहर द्वारा सत्यापित करना चाहिए।"

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में 'पण्याध्यक्ष' (संस्कृत) की नियुक्ति की है जो राज्य के विक्रय का अधिष्ठाता होता था. तराजू-बाट का भ्रष्टाचार रोकने के लिए "पौतवाध्यक्ष". लोहे की तुला के लिए "आयमानी" शब्द का प्रयोग हुआ है और व्यापारियों से कर वसूलने के लिए "शुल्काध्यक्ष' का पद. चाणक्य ने अपने संस्कृत ग्रंथ में एक पूरा अध्याय व्यापारियों के लालच से प्रजा की रक्षा के लिए किये जाने वाले उपायों पर दिया है. प्लिनी ने अपने ग्रंथ "नेचुरल हिस्ट्री' में इस बात की शिकायत की है कि- 'रोमन सोने की भारी मात्रा भारत से आने वाली काली मिर्च पर ही खर्च हो जाती है" इसी वजह से काली मिर्च को संस्कृत में "यवनप्रिय" कहा जाता है. हरी मिर्च बेचने की आवाज़ लगती हो या न लगती हो पर भारत के बाजारों में काली मिर्च के लिए "यवनप्रिय ले लो" की पुकार ज़रूर मिलती होगी.

भारतीय राज-व्यस्था को चलने के लिए जिन प्राचीनतम ग्रंथों का उल्लेख किया जा सकता है, सबके सब संस्कृत में हैं. कर-शुल्क के नाम, पदों के नाम, दंडों के नाम, कर्मचारियों के नाम, राजाज्ञाएं अधिकांशत: सब संस्कृत में है. चाहे वो शुक्रनीति हो, कामकंद नीतिसार हो, अर्थशास्त्र हो या भारद्वाज संहिता हो या याज्ञवलक्य स्मृति, इनमें अर्थशास्त्र विश्व-विख्यात है जिसके लेखक को आचार्य दंडी ने 'विष्णुगुप्त' कहा, बाणभट्ट ने 'कौटिल्य' और विशाखदत्त ने 'चाणक्य'. अगर इस संस्कृत राज-व्यवस्था ग्रन्थ को गहराई से देखें तो आमत्योत्पत्ति, मंत्राधिकार, दूत-प्रणिधि, दण्डकर्म, कूट-युद्ध, शुल्क, व्यापार, सैन्यशक्ति, कृषि, वाणिज्य, पशुपालन आदि हैं, शुक्राचार्य ने इसमें "कुसीद' अर्थात बैंकिंग भी शामिल की है. दस और "राजव्यवस्था के संस्कृत आचार्यों" मतों का उल्लेख मिलता है. (1) मानव (2) बृहस्पति (3) उशना (4) भारद्वाज (5) विशालाक्ष (6) पराशर (7) पिशुन (8) कौणपदंत (९) वातव्याधि (10) बाहुदन्ती-पुत्र. सबने संस्कृत में ही राज-व्यवस्था अर्थात सरकार चलाने के नियम लिखे हैं.

राज-कार्य चलाने के लिए गुप्तचर व्यवस्था का जैसा वर्णन मिलता है उसके लिए एक लंबे श्रेणीक्रम की आवश्यकता है. गुप्तचरों के प्रकार--(1) कापटिक (2) उदास्थित (3) गृहपतिक (4) तापस (5) सत्री (6) तीक्ष्ण (7) रसद (8) भिक्षुक. संस्कृत ग्रंथों में सरकार चलाने के लिए राजदूतों की नियुक्ति के विस्तृत अध्याय हैं-"दूतमुखा वै राजान" अर्थात-"दूत राजा के मुख के सामान हैं" इनके भी अलग-अलग प्रकार हैं--(1) निसृष्टार्थ (2) परिमितार्थ (3) शासनहर. इसी तरह, आठ सौ ग्रामों के मध्य एक 'स्थानीय' (नगर) राजा को बसाना चाहिए, चार सौ ग्रामों के मध्य एक 'द्रौणमुख' (नगर) दो सौ ग्रामों के मध्य एक 'खार्वटिक' (क़स्बा). गांवों में गोप, स्थानिक, संख्यानक आदि अधिकारी नियुक्त होंगे. समाहर्ता कर-संग्रह करेगा, गाणनिक उसका हिसाब-किताब रखेगा, सन्निधाता कोषाध्यक्ष होगा. शुक्राचार्य ने राजा के दुर्गुण, राजा की दंडनीति, राज मार्गों का निर्माण, धर्मशालाओं का निर्माण, शिकार के नियम, मंत्रियो के कार्य, युवराज के कार्य का बहुत विस्तृत वर्णन किया है.

जहां तक संस्कृत के एक "मुर्दा भाषा" होने का सवाल है. संस्कृत शब्द का भाषा के रूप में प्रयोग सबसे पहली बार 'रामायण' में मिलता है. इसके लिए सबसे पहले 'लिपि' और 'भाषा' को समझ लेना उचित होगा. बौद्ध ग्रंथों में आता है कि बुद्ध अल्पायु में ही 64 'लिपि' जानते थे. सबसे प्राचीन लिपियों में 'ब्राह्मी' और 'खरोष्टि' हैं. साधारण अर्थों में इसे 'लिखना' और 'बोलना' से समझा जा सकता है. भाषा, लिपि की जन्मदात्री है. पहले इंसान ने बोलना सीखा फिर लिखना.

क्योंकि लिखने के लिए 'चिन्हों, अक्षरों, शब्दों और वाक्यों' की आवश्यकता होती है. इसलिए अनिवार्य रूप से कुछ नियम चाहिये. नियम चाहिये तो 'पाणिनि' चाहिए, 'अष्टाध्यायी' चाहिए. अभी तक भी आधुनिक विषय संस्कृत से अधिक व्याकरणनिष्ठ "भाषा-लिपि" खोज नहीं सका है. संस्कृत, कंप्यूटर कोडिंग के लिए सबसे पूर्ण भाषा स्वीकृत की गई है. संस्कृत के भारतीय लोक-व्यवहार में प्रयोग के लिए कुछ ग्रंथों को पढ़ना उचित होगा जिनमे--"संस्कृत एंड द एवोल्युशन ऑफ़ ह्यूमन स्पीच" तथा "द वंडर दैट इज संस्कृत" या "संस्कृत एंड द मोर्निंग आफ्टर' इसके अलावा "संस्कृत एज अ लिविंग लेंगुएज इन इंडिया' भी पढ़ने योग्य है. कर्नाटक के मत्तुर गांव को आज भी 'संस्कृत विलेज' कहा जाता है. बच्चे से लेकर बूढ़े तक सब संस्कृत बोलते हैं. मध्य प्रदेश का झीरी गांव लगभग हज़ार की आबादी वाले इस गांव में संवाद की मुख्य भाषा संस्कृत है. उडीसा का सासन गांव, मध्य प्रदेश का ही बाघुवर गांव, राजस्थान का गनोदा गांव, ऐसे और भी हैं. उत्तराखंड और हिमाचल की द्वितीय राजभाषा संस्कृत है.

भाषा-विज्ञान में 'मृत-भाषा' उस भाषा को कहा जाता है जिसका बोलने वाला 'अंतिम व्यक्ति' जीवित न हो. जैसे "खजारियन, खितान, झांग-झुंग, बाबुज़ा, कोइबाल, अहोम, लुबांकी, हुकुमिना आदि. इसलिए जल्दबाजी में संस्कृत को 'मृत-भाषा' कहने की गलती नहीं करनी चाहिए.

गौतम बुद्ध

राजेंद्र रंजन चतुर्वेदी

तीर्थंकर शब्द की तरह से बुद्ध भी पारिभाषिक शब्द है और बोधिप्राप्त साधक को बुद्ध कहा जाता था. बौद्धग्रंथों में कहीं सात बुद्धों का उल्लेख है तो कहीं पच्चीस बुद्धों का विवरण मिलता है. जैनदर्शन के प्रतिपादक तीर्थंकर महावीर वर्द्धमान की तरह गौतमबुद्ध भी बौद्धदर्शन के प्रवर्तक हैं.

शाक्यों के संघराज्य की राजधानी थी कपिलवस्तु. यहां राजा शुद्धोदन के यहां सिद्धार्थ का जन्म हुआ. इनकी मां थीं- महामाया, जो कोलिय राज्य की राजपुत्री थीं.

वैशाख की पूर्णिमा के दिन लुम्बिनीवन में गौतम का जन्म हुआ, उस समय महामाया अपने मायके जा रही थीं.

सिद्धार्थ गौतम के 29 वर्ष अत्यन्त सुकुमार वैभव-विलास के परिवेश में व्यतीत हुए. यशोधरा से विवाह हुआ और राहुल नामक पुत्र का जन्म हुआ. एक दिन जब गौतम नगर-भ्रमण कर रहे थे, तब इनको एक बूढ़ा आदमी दिखा, एक रोगी व्यक्ति दिखा और एक शवयात्रा भी इन्होंने बड़े अचरज के साथ देखी. इससे पहले इन्होंने जाना ही नहीं था कि मृत्यु क्या है, जरा क्या है और रोग क्या होते हैं? इन्होंने सारथि छंदक से पूछा कि क्या जरा, रोग और मृत्यु मुझे भी हो सकते हैं? छंदक ने उत्तर दिया कि युवराज, ये तो शरीर के साथ लगे हुए हैं, प्रत्येक शरीरधारी को रोग होते हैं, प्रत्येक शरीरधारी बूढ़ा हो सकता है और मृत्यु तो सभी की होती है.

इनके मन में उथल-पुथल होने लगी कि इतने दु:खों के होते हुए विलास-वैभव का क्या अर्थ है? तभी इन्होंने एक शान्तमना, प्रसन्नचित्त संन्यासी को भी देखा था. एक दिन गौतम ने अपनी पत्नी और पुत्र और राजमहल को त्याग कर महाभिनिष्क्रमण किया. राजगृह के राजा बिंबसार से मिले, आडार, कालम, उद्रक से तत्त्वचर्चा की, पंचवर्गीय-ऋषियों के साथ कठोर तप किया.

वैशाख-पूर्णिमा के दिन ये शालवन में बोधिवृक्ष के नीचे आसन लगा कर ध्यान में बैठे थे. तभी इनको पूर्वजन्मों का, विश्व-उत्पत्ति की कारण-परंपरा का ज्ञान प्राप्त हुआ. सारनाथ में पांच तापसों को इन्होंने दो अंतों से दूर रहने का पहला प्रवचन दिया कि शरीर को व्यर्थ कष्ट देना निरर्थक है, संन्यासी को विषय-वासना से दूर रहना चाहिये.

धर्मचक्र का प्रवर्तन करते हुए इन्होंने मध्यम-मार्ग को ही उचित मार्ग बतलाया. इस प्रवचन को धर्मचक्र-प्रवर्तनसूत्र कहा जाता है. सारनाथ में बुद्ध ने चातुर्मास्य किया और संघ की स्थापना की, संघ, जिसमें किसी एक की सत्ता नहीं, संघ की समष्टि-सत्ता का महत्त्व है.

चातुर्मास्य के बाद ये गया में आये. यहां कश्यपबन्धु इनके शिष्य बन गये. फिर ये राजगृह गये. यहां सारिपुत्त और मौद्गलायन इनके शिष्य बन गये. इनको अग्रश्रावक कहा जाता है.

जब गौतमबुद्ध कपिलवस्तु गये थे, तब अस्सी हजार शाक्य इनके अनुयायी बन गये, जिनमें प्रधान थे आनंद. उपालि बौद्धसंघ का प्रमुख बना. गौतमबुद्ध पेंतालीस बरसों तक सोलह जनपदों में भ्रमण करते रहे. आगे चल कर इनका विरोध बढ़ने लगा. विरोध का नेतृत्व देवदत्त ने किया और गृध्रकूट पर्वत से एक भारी शिला इनके ऊपर गिरा दी, किन्तु ये बच गये.

बेलुवग्राम में जब ये बीमार हो गये तो इन्होंने आनंद से कह दिया कि मेरे जीवन का प्रयोजन अब पूरा हो चुका है. इन्होंने चतु:सूत्री का कथन किया - पवित्र आचरण, तप:साधन, ज्ञानसाधना और विचारस्वातन्त्र्य.

अस्सी बरस की अवस्था में कुशीनगर के शालवन में इनका महापरिनिर्वाण हो गया. कुशीनगर के मल्लों ने इनका दाहकर्म किया, आठ दिनों तक नृत्य-गायन किया. बाद में वैदिकों की रीति को अपना कर स्मारक के रूप में इनकी अस्थियों पर स्तूप बनवाये गये.

दोस्त

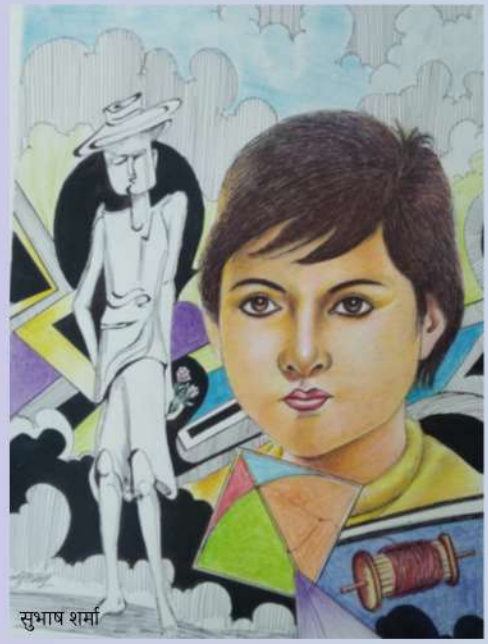
सुभाष शर्मा

मनीष कुमार सिंह

शहर काफी बड़ा था. हर बड़े शहर की तरह यहां भी हर ओर लोग ही लोग थे. सब एक दूसरे को अनदेखा करके अपने गंतव्य की ओर बढ़ते जाते. किसी की नजर किसी से जुड़ती नहीं थी हालांकि चलते वक्त कभी-कभार जरूर टकरा जाते थे. ऐसा होने पर वे एक दूसरे से माफी मांगने के लिए रुकते नहीं थे.

लोगों के एक जगह से दूसरी जगह जाने के लिए बसें, ऑटो, टैक्सी, प्राइवेट गाड़ियां बड़ी तादाद में थीं. सड़कें अजगर की तरह दूर तक पसरी रहतीं. कितना भी ट्रैफिक ऊपर से गुजर जाए उफ तक नहीं करतीं.

हर वर्ग के लोग यहां रहते थे. शहर सभी को उनकी आमदनी और कार्य के हिसाब से जीने की सहूलियत देता था. इसलिए तो आलीशान कोठियों-बंगलों व आरामदायक फ्लैट के साथ अवैध कॉलोनियों की दुर्गंधयुक्त नालियों के किनारे बसेरे थे. झुग्गियों में मानवता का एक भाग पांव सिकोड़कर पनाह लेता. सड़क व बाजार में ये सभी नजर आते. इसका यह मतलब नहीं कि शहर समावेशी था. दरअसल प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग जी रहा था सबसे अलग होकर.

मैं खुशकिस्मत था जो एक ठीक-ठाक नौकरी पा गया. शहर के केंद्र से कोई दस-बारह किलोमीटर दूर रिहाइश भी सही थी. किराया वाजिब एवं जेब के अनुकूल था. बड़े शहरों के लिए दस-बारह किलोमीटर क्या चीज है? लोग दूसरे शहरों से रोज काम पर आते हैं. सड़क के दोनों ओर सजी-धजी दूकानें व शोरूम मन को ललचा रहे थे. वैसे बाहर फुटपाथ पर भी सामान बिछाकर लोग बेचने के लिए मौजूद थे. मैं दूर से ही अपनी हैसियत और जरूरत की चीजें भांपने की कोशिश कर रहा था. एक शोरूम के सामने खड़ा होकर शीशे के पीछे सजायी शर्ट और टाई निहारने लगा. देखने में कोई बुराई नहीं है, विंडो शॉपिंग हो जाएगी. हिम्मत करके कुछ देर बाद अंदर चला गया. उस दिन अच्छे कपड़े धारण कर रखे थे. दूसरे ग्राहकों में व्यस्त होने के बावजूद सेल्समैन ने मेरी तरफ देखा. एक मुस्कान भी फेंकी. मैं उपेक्षा से जितना आहत होता हूं उतना ही स्वागत से भी घबराता था. पहले से तैयारी करके नहीं आया था कि क्या कहना है. फिर भी कुछ एक शर्ट उलटे-पुलटे. यहां सेल्समैन की व्यंग्य भरी मुस्कान मन पर क्षणिक घाव लगाती है पर एअर कंडीशंड शोरुम से बाहर आकर हम पूर्ववत हो जाते हैं.

आज खाली होने के कारण मैं भरे बाजार से निकल कर अपेक्षाकृत खाली सड़क पर टहलने लगा. निरुद्देश्य नहीं बल्कि तफरीह के लिए. सहसा लगा कि एक आदमी मेरे पास चल रहा है. मैंने ध्यान नहीं दिया. आखिर मेरी ओर भी कौन ध्यान देता है लेकिन जब यह लगा कि वह व्यक्ति अपनी निगाहें देर से मुझ पर गड़ाए भी हुए है तो जाहिर था कि मैं आशंकित हो उठा. पलट कर उसकी तरफ देखा तो पाया कि वह मुझे ताक रहा था. पूछने का मन हुआ कि कहिए क्या बात है? वह व्यक्ति खुद बोला, "लगता है कि आपको पहले देखा है."

मैं चौंक कर सावधान हो गया. यह क्या बला है? जेबकतरे वगैरह भीड़ में हाथ की सफाई दिखाकर अंतर्ध्यान हो जाते हैं. राहजनी करने वाले इतनी देर में अपना काम करके निकल जाते हैं. यह शख्स तो पीछे पड़ा हुआ है. जरुर कोई ठग होगा. खैर मैं कौन सा मूर्ख परदेशी हूं जो उल्लू बना देगा. फिर वह भी अकेला और मैं भी. उसका कोई दूसरा साथी नहीं दिख रहा था.

मैंने बेहद गंभीरतापूर्वक रुखाई से कहा, "जी नहीं आपको गलतफहमी हुई है, मैं आपको नहीं जानता." मुसीबत सर पर पड़ने पर इंसान काफी साहसी हो जाता है. सहसा मैंने पाया कि शहर बिल्कुल सुनसान हो गया है. वक्त पर यहां कौन किसकी मदद करता है.

वह फिर भी साथ चलता रहा. मैंने गौर किया कि वह लगभग मेरी कद-काठी का था. शायद उन्नीस ही होगी. कपड़े थोड़े गंदे थे. अगर इतना ही रसूख वाला होता तो क्या ऐसे किसी के पीछे पड़ता. देखा जाए तो वह कोई इतना बड़ा दादा टाइप नहीं दिखता था लेकिन चार सौ बीस होने की आशंका से इंकार नहीं किया जा सकता था. मैं सतर्क था. शाम ढलकर रात का रुप ले रही थी.

"इंसान, इंसान पर भरोसा नहीं करता है," उसी ने पुन: शुरूआत की.

"सो तो है।" मेरे मुंह से भी निकल गया. लेकिन इसमें किसी का क्या दोष? वक्त ही ऐसा है, किसी की जान-माल सुरक्षित नहीं है."

वह सहमति में सर हिलाने लगा. अंधेरे में मुझे वह ज्यादा जरुरतमंद लग रहा था. शक्ल ध्यान से देखने पर उसकी दाढ़ी दो दिन की बढ़ी हुई दिखी. आदमी उम्रदराज था. कनपटियों के बाल खिचड़ी हो चुके थे.

एक गली में घुसकर मैं चाय की दुकान पर खड़ा हो गया. वह भी रुक गया. बेंच पर बैठकर मैंने दुकान वाले से चाय को कहा. पेशोपेश में था कि उसे चाय के लिए पूछूं या नहीं? आखिर कौन सा उसे जानता हूं. वह खुद ही बेंच पर बैठ गया. दुकानदार ने हमें साथ देखकर बिना कहे एक नहीं दो कप थमा दी. "भाई साहब!" वह शिष्ट लहजे में बोला, "मेरा एक दोस्त बिलकुल आपके जैसा है. माफ कीजिएगा, शुरु में इसलिए पहचानने में गलती हुई. मुलाकात हुए काफी समय गुजर गया. हम लोग इकट्ठे काफी वक्त गुजारा करते थे."

‘‘वह क्या आपके साथ काम करता था?" मैंने यूं ही पूछ लिया.

"अरे नहीं," उसने चाय की चुस्की लेनी आरंभ कर दी थी. "बस हम ऐसे ही मिलते थे. कोई कारोबारी बातें नहीं होतीं, अपने-अपने मन की बातें करते घंटों, जी हां. जो बातें इंसान पत्नी-बच्चों, मां-बाप से नहीं कर पाता वे सब हम एक-दूसरे से करते थे." वह दूर कहीं नजर गड़ाकर मुस्करा रहा था.
"मन का मीत कहिए," मैं यह सब सुनकर हठात् बोल उठा.

उसने चाय का कप नीचे रखकर तर्जनी हिलाते हुए कहा, "हां, बिल्कुल सही कहा. ऐसा ही दोस्त था मेरा.' वह मानो उदास हो गया. "ऐसी न जाने कितने कप चाय मैंने उसके साथ पी थी. समझिए कि चाय पीना एक बहाना था. साथ में कभी एकाध मठरी खा ली. बात साथ वक्त गुजारने की थी." वह विगत को वर्तमान में जीने का प्रयास कर रहा था.

"दुनिया में एक भी अगर इस लायक मिल जाए जिससे मन की बात कह सके तो जिंदगी खाली-खाली नहीं लगती. वह भी आपकी तरह बिल्कुल फिलॉसफर था." वह जोर देकर बोला.

"मैं और फिलॉसफर?" मुझे ताज्जुब हुआ. "मतलब आप भी गहरी बात करते हैं."

"स्कूल में भी आपका कोई साथी होगा?" मैंने पूछा.

"जी ढ़ेर सारे थे. बात यह है कि बचपन में पूरा स्कूल का कैम्पस, घर का अहाता, सड़कें और गलियां, पूरा माहौल मेरा साथी था. सच पूछिए तो बचपन में हम सबका आसपास के माहौल से अपनापन होता है. बाद में सब बदल जाता है." चाय की दुकान की मंद रोशनी में वह अब किसी भी दृष्टि से संदेहास्पद नहीं प्रतीत हो रहा था. उलटे मुझे उसमें अपना अक्स दिख रहा था.

"मेरा बचपन तकलीफ में बीता." वह बिना पूछे अधिकारपूर्वक कहने लगा. "घर में गरीबी थी. आमदनी का जरिया बढ़ाने के लिए पढ़ाई के साथ मुझे काम पर भी लगना पड़ा. एक रोज की बात है पार्क में दोपहर को थक कर सो गया था. वहां ताश खेलने वालों की मंडली बैठती थी. उन्होने टांग खींचकर मुझे दूर कूड़े के ढ़ेर के पास कर दिया. मैं बेखबर सोया रहा. बाद में शाम को पुलिस वाला आया और दो डंड़े जमाए. बड़ी मुश्किल से ईमान की दुहाई देकर मैं हवालात जाने से बचा. नहीं तो मां-बाप को जमानत कराने में एकाध बचे गहने बेचने पड़ जाते. जेब में पड़ी चने की पुड़िया तक वे ले गए."
सहसा वह मुझे बेहद गरीब लगने लगा.

उसने आगे सुनाना शुरु किया. "अपने उस दोस्त की संगत में मुझे पुरानी उदासी वाली यादों से छुटकारा पाने में काफी मदद मिली.'

मैंने चाय के पैसे अदा करने के लिए जेब में हाथ डाला.

"नहीं," उसने चाय वाले को हाथ से इशारा किया, "बाबूजी से पैसे मत लेना.' सचमुच में उसने मेरे पैसे नहीं लिए. उस आदमी के पकड़ाए नोट को रख लिया.
हम दोनों साथ उठे. वह अभी भी चल रहा था, पर अंदाज जुदा था. अब वह अपने रास्ते जाना चाहता था. सड़क के किनारे गलियां मिलनी शुरु हो गयी थीं. "आपका दोस्त अभी कहां है?" मेरे इस प्रश्न के उत्तर में वह हंसा.

"पता नहीं बाबूजी कहां है, आज मुझे वह आप में दिखा.' वह एक गली में घुस रहा था. मैं उसे जाते देखता रहा.

उसने मुझमें अपने अतीत के दोस्त को देखा था. पर मैं उसे जाते वक्त उसमें स्वयं को देख रहा था. उसके चले जाने के बाद सड़क का सूनापन मन के रीतेपन का ही स्वाभाविक विस्तार लगा. नीरवता कह रही थी कि मानो वह कभी था ही नहीं. पर मन के किसी कोने में यह लग रहा था कि वह हमेशां ही था. शहर में उसके और मेरे जैसे बहुत से होंगे जो ऐसे ही किसी दोस्त को ढूंढ रहे होंगे या जिन्हें दोस्त की जरुरत होगी.

कष्ट-कथा

आनंदवर्धन ओझा

'क्या ज़रूरी था, दाढ़ तोड़ के जाना तेरा,
माना, तू नरमदिल न हुआ, ठेकुआ मेरा.'

बिहारी भारत के किसी कोने में रहे, वह अपनी प्रवृत्ति से विवश रहता है. गर्मियों में उसे चाहिए आम-लीची-बेल, हर मौसम में सत्तू, सुबह के नाश्ते में जलेबी-कचौड़ी-घुघनी और शाम के वक़्त भूंजा. गाय-बकरी की तरह दिन-भर जुगाली करने को चाहिए मगही पान और सुगंधित तम्बाकू. छठ-व्रत के समय ठेकुए-खजूर के लिए उसका जी मचलता है और होली के मौसम में गुझिया-पेड़ुकिया के लिए उसकी आत्मा ऐंठने लगती है और, किसी भी दशा में प्रतिदिन रीति-नीति-राजनीति तथा साहित्य पर बतकुच्चन के लिए उसे चाहिए मित्रों-संघतियों की एक टोली, अपने बहुत करीब.

अजीब जीव होता है बिहारी. मेहनतकश, श्रमजीवी और हठी भी. किसी भी काम के लिए तत्पर, यह कहता हुआ-"होइबे नहीं करेगा? अरे, होगा कइसे नहीं?" और बिहार-रत्न कविवर दिनकर लिख भी तो गए हैं-

"ख़म ठोंक ठेलता है जब नर,
पर्वत के जाते पांव उखड,
मानव जब जोर लगता है,
पत्थर पानी बन जाता है."

दिनकरजी की इस ललकार की अनसुनी कर देने वाला भला बिहारी कैसे हो सकता है? उस पर तुर्रा ये कि बिहारी अगर ब्राह्मण हुआ तो उसका विलक्षण मिष्टान्न-प्रेम तो जग-जाहिर है ही. कहा गया है ना, 'विप्रम् मधुरं प्रियं!' इसी कथन का उल्लेख करते हुए एक बार किसी ने कहा था- 'पंडित जी तो ऐसे मिष्टान्न-प्रेमी होते हैं कि गुड़ का एक टुकड़ा कहीं डाल दीजिए, पंडित जी वहीं चिपके मिलेंगे.' मुझे लगता है, भले आदमी ने बहुत गलत नहीं कहा था.

पिछले साल अक्टूबर में, छठ पूजा के बाद, आस लगी रही कि बिहार से कोई-न-कोई आएगा, छठ के ठेकुए लाएगा. पांच-दस मुझे भी प्रसाद के रूप में दे जाएगा. सो, प्रतीक्षारत रहा और पलटते पन्नों की तरह दिन बीतते रहे, बिहार से कोई भलामानुस आया ही नहीं और ठेकुए की लालसा में जी मचलता रहा, आत्मा ऐंठती ही रही.

आख़िरश, एक दिन बिहारी का ब्रह्मतेज जागा, हठधर्मी, श्रमजीवी और स्वाबलंबी जो ठहरा. श्रीमती जी विद्यालय गयी थीं. पूरे घर में मेरा साम्राज्य था. मैंने गुड़ की भेली उठाई. भई, पुणे का गुड़ था-पत्थरदिल था, तोड़े न टूटता था. मैंने उसे नरमदिल बनाने के लिए धीमी आंच पर पानी में डालकर चढ़ा दिया. बगल के कमरे में टी.वी.ऑन था.

महत्त्व का एक समाचार कानों पड़ा तो मैं दूसरे कमरे में दाखिल हुआ और समाचार सुनाने लगा. अचानक गुड का ख़याल आया. किचेन में दौड़कर पहुंचा. पत्थरदिल गुड़ तो मोम-सा पिघलकर लेई बन गया था और खौल रहा था. मैंने शीघ्रता से बर्नर बुझाया और आटे में उसे मिलाकर हाथ जला-जलाकर गूंथने लगा. खोजकर पटनहिया सांचा निकाला और उस पर परिश्रमपूर्वक आटे की छोटी-छोटी गोलियों को ठेकुए की आकृति में ढालने लगा. जैसे-जैसे गुंथा हुआ आटा ठंढा होता जा रहा था, वैसे-वैसे वह पथराता जा रहा था.

अब तो सांचे पर दबने में भी उसे आपत्ति थी. मेरे हठी और श्रमजीवी मन ने हठ न छोड़ा. बिहारी के स्वाभिमानी मन में दो ही वाक्य गूंज रहे थे- 'तू है बिहारी, तो कर परिश्रम, हार गया, तो बिहारी कैसा?'

लीजिये हुज़ूर, घंटों के श्रम का प्रतिफल हुआ कि अब शक्लो-सूरत से ठेकुए तैयार थे, बस, उन्हें रिफाइंड में डूब-उतरा कर और थोड़ी देर नर्त्तन कर कड़ाही से बाहर आना भर था. श्रीमती जी के विद्यालय से लौट आने के पहले ही यह कृत्य भी पूरा हुआ. ठेकुए तो देखते ही बनते थे- तले हुए लाल-लाल, सोंधे-कुरकुरे ठेकुए लेकिन अभी गर्म थे, मुंह में डाल लेने का रिस्क कौन लेता? सुविज्ञ बिहारी तो हरगिज़ नहीं.
ठेकुए के शीतल होने की प्रतीक्षा हो ही रही थी कि श्रीमतीजी आ पहुंचीं. घर में पांव रखते ही चहकीं- "क्या बना है घर में? बड़ी सुगंध आ रही है. क्या बनाया है 'मेड' ने?"

मैंने गौरव से भरकर कहा- 'ठेकुए बनाये हैं मैंने, खस्ते और कुरकुरे, टुह-टुह लाल.'
श्रीमती जी को सहसा विश्वास नहीं हुआ, विस्फारित नेत्रों से मुझे घूरते हुए बोलीं- 'आपने?'
मेरा जी तो अगराया हुआ था, छाती ठोंकते हुए मैंने कहा- 'हां भई, मैंने.'

दो-तीन घंटों बाद ठेकुए जी ठंडे पड़े, एक मैंने, एक श्रीमती जी ने मुश्किल से खाए. मेरा मन रखने को श्रीमती जी ने नरमदिली से कहा- 'मोयन नहीं डाला क्या? ठेकुआ थोड़ा कड़ा हो गया है.'

मैं भला क्या कहता? 'मोयन' शब्द से पहली बार मुलाकात जो हुई थी.

दूसरे दिन जब ठेकुए बिलकुल ठंडे पड़ गए. मैं बड़ी हसरत से उनके पास गया. थोड़ी देर तक निहारता रहा उन्हें. दिखने में तो वे बहुत सुदर्शन थे, आकर्षित करते थे अपनी ओर, किन्तु पुणे के गुड की तरह पत्थर दिल हो गये थे रात भर में. मन मारकर रह गया, दांत से उसका एक टुकड़ा भी काट लेना असंभव था. मेरा सारा उत्साह भी ठंडा पड़ने लगा.

सप्ताह-भर में श्रीमती जी ने ऐलानिया घोषणा कर दी कि ये ठेकुए असाध्य, असंभव खाद्य-सामग्री हैं. उन्होंने स्टील का एक बड़ा कटोरदान ठेकुओं से भरकर कबर्ड के किसी एकांत में झोंक दिया और शेष ठेकुओं को एक पॉलिथीन में भरकर काम वाली बाई को दे दिया, इस हिदायत के साथ कि लोढ़े से तोड़-कूचकर अपने बच्चों को खाने को दे. बाई तो खुश हुई, लेकिन मिष्टान-प्रेमी बिहारी का मन मुरझा गया. वह सोचता ही रहा कि जिन ठेकुओं के लिए स्वयंपाकी बना, उनकी रक्षा वह कैसे करे?

लेकिन एक-डेढ़ महीना बीत गया, ठेकुए तो मन से उतर ही गए थे, यादों की गलियों में कहीं खो भी गए.

वह जनवरी का महीना था. उस दिन भी घर पर मेरा ही आधिपत्य था. जैसे चूहा किसी खाद्य-सामग्री के लिए घुरियाता है, ठीक वैसे ही सुबह के जलपान के बाद किसी मीठी सामग्री की तलाश में भटकता हुआ मैं कबर्ड में रखे कटोरदान तक जा पहुंचा. बहुत दिनों के बाद उन्हें देखकर मन में हर्ष की लहर दौड़ गई. मैंने एक ठेकुआ उठाया और बांयीं दाढ़ से तोड़ने की कोशिश की. वज्र ठेकुआ काहे को टूटता? मैंने बायीं दाढ़ से भरपूर जोर लगाया और तभी दायीं दाढ़ में कनपटी के पास नगाड़े बज उठे- 'कड़-कड़-कड़', दिन में तारे देखने का सुख तो मिला, लेकिन असहनीय पीड़ा भी हुई. दायें कल्ले पर हाथ रखकर अपनी चौकी पर धम्म-से जा बैठा.

दोपहर में जब श्रीमतीजी आयीं, तब तक तो दायें जबड़े पर सूजन आ गयी थी. उन्होंने मेरी हालत देखी तो दांतों तले अपनी ऊंगली दबा ली, फिर गुस्से से बोलीं-'इन नामुराद ठेकुओं पर मुंह मारने की क्या जरूरत थी? मैं तो इन्हें फेंकने ही वाली थी.'
मैं अपने मिष्टान्न प्रेम पर शर्मिंदा होने के सिवा और कर भी क्या सकता था.

दूसरे दिन दंत-चिकित्सक के पास गया और महीने-भर की दवाएं लेकर लौट आया. दवाओं के सेवन से तात्कालिक आराम तो हुआ, लेकिन मेरा मुंह तो कड़कड़डूमा की अदालत बन गया है.

मित्रो, वह एक अकेला ठेकुआ मुझे कम-से-कम एक हजार रुपये का तो पड़ ही गया और जबड़े का दर्द अपनी जगह कायम है. आज भी कुछ खाता हूं तो दायां जबड़ा 'कड़कड़-कड़कड़' बोलता है. लगता है, लोहे के चने चबा रहा हूं. लेकिन बिहारी तो बिहारी ठहरा, ज़िद्दी, श्रमजीवी और संघर्षशील. उसका पान और ठेकुआ प्रेम आज भी यथावत बना हुआ है. लेकिन, सोचता हूं, क्या ज़रूरी था मेरी दाढ़ तोड़ के जाना उसका? जाने अब कब मिलेगा पथराए ठेकुओं की जगह मीठा, मुलायम, खस्ता और कुरकुरा ठेकुआ.

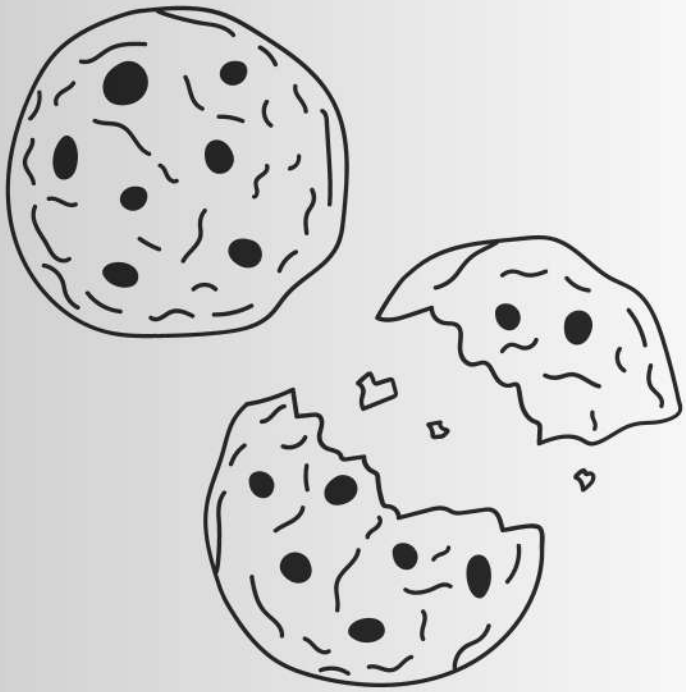

कन्या

(कन्या पूजन पर नन्ही दुर्गाओं को समर्पित)

तूलिका मिश्र

कन्या पूजन योग्य निश्चय ही तुम हो,
तुम योग्य आराधना और मान की,
यह प्रथा है तुम्हारे भीतर जगाने
हिम्मत और अभिमान को,
पैर पूजन योग्य अवश्य बनाना,
चमकाना भव्य मस्तक–ललाट
त्रिनेत्र खोल बनना शूलधारिणी,
तो कभी बन जाना महिषासुरमर्दिनी !

तुम्हीं हो छाया तपती धरती पर,
तुम्हीं पिपासा ज्ञान की
तुम्हीं से लज्जा की लज्जा है,
तुम उत्तरदायी स्वाभिमान की
धूप-दीप से सींच कर भक्ति
संचित कर लो अपूर्व इक शक्ति,
कर आत्मसात चेतनामयी दुर्गा को
बन जाओ गरिमामयी दुर्गा सी !

गरिमा- जो अटल अनंत हो
ना हो निर्भर पर-इच्छा पर ,
ममता, दान, सौंदर्य से निहित,
जिसमें हिम्मत और अपार हो शक्ति,
गरिमा- जो अतिवादी ना हो,
जो चले मधयम मार्गों पे अक्सर,
अपने अंदर रूप-कांति भर कर भी
जो रखे आग क्रांति की धधकाकर,
तुम ही सुरीली, तुम ही सौम्या,
तुम ही स्नेह की अमृत प्याला,
पर देखो अन्याय कहीं भी जब तुम ,
झट बन जाना प्रलयमयी धारा !

तुममें समाहित काल रात्रि भी,
तुम्ही में वृजरानी राधा,
स्मरण रहे बस तुम में ही तो हैं,
महिषासुर मर्दिनी वाली माया,
कर बुद्धिरूपी भगवती को जागृत,
हरना अपनी सब बाधा,
कभी शत्रु भयवर्धिनी फिर बनकर
काटना पापियों का मस्तक आधा !

कछुए और तितली का रिश्ता

पल्लवी त्रिवेदी

फूल और तितली का रिश्ता तो दुनिया भर को मालूम है
कछुए और तितली का भला आपस में क्या रिश्ता?

जितना अचरज भरा ब्रम्हांड है
उसके नियम और तौर तरीके भी उतने ही अचरज भरे,
यहां हर कोई कर्जदार है
और कर्ज चुकाने को बाध्य भी
इस ब्रम्हांड को एक साहूकार चला रहा है.

फूलों का कर्ज चुकाए बिना तितली की मुक्ति संभव नहीं
इसलिए तितलियां चली आती हैं उन कछुओं के आंसू पीने
जिन्हें खुद भी समंदर के नमक का कर्ज़ अदा करना है.
मैं नेशनल जियोग्राफिक देखते हुए सोचती हूं

कितना कर्ज़ इस देह और आत्मा पर लाद रखा है हमने
मृत्यु तो सिर्फ देह को वापस प्रकृति को सौंपेगी
आत्मा को तो तितली होना ही होगा
कुछ उदास आंखों के आंसू पीने ही होंगे.

[तितलियां कछुए के आंसू पीती हैं, वैज्ञानिक जानकारी के लिए गूगल कर सकते हैं]

क्या है तुम्हारे पास?

बाबुषा कोहली

मेरे पास एक नदी है
केले, नीम और अशोक के बूढ़े होते पेड़
अनगिनत सितारे हैं मेरे पास और एक चांद भी
जिन्होंने मेरी कविता को तुमसे
ज़्यादा जाना है
एक दिल है ख़ालिस वैसा
जैसा वह है
गुलाबी और दाग़दार
कुछ चिट्ठियां हैं काग़ज़ और भोजपत्रों पर लिखी हुई
हर रुत में उतरती हैं स्वर्ग से परियां
धरती पर करतीं वे प्रेम
जल जाती हैं
मेरे पास एक झरना है बहता मुसलसल
जिसमें नहाने वे आती हैं
घर लौटने से पहले
एक क़िस्सा है मेरे पास
एक भीड़ भरी सड़क
एक-दूसरे की राह काटती गलियां
एक बिन बिजली का गांव
एक छत जिस पर उतरते हैं देवता पासे खेलने
एक छूटती हुई ट्रेन
एक और छूटती हुई ट्रेन
फिर एक और छूटती हुई ट्रेन
एक पहाड़ पर खुदा हुआ मेरा नाम
एक काजल की डिबिया
एक अंतहीन रात
मेरे पास एक फ़िल्टरहीन जीवन की रौशनी है
और एक बिन पछतावे वाली हंसी
बताओ, क्या है तुम्हारे पास?

चांद के मन की बात

नीता पोरवाल

तुमसे प्रकाशित मैं.
और उसी प्रकाश से ही
तुम्हें आज एकटक देख पाता मैं.
सुन लिया करता हूं आंखों से
सारी अनकही तुम्हारी
जैसे कि हमेशा सुन लिया करती हो
मुझे तुम.

और उन दिनों
जब तुम्हारी नजरों से ओझल हो जाऊंगा
तब ये मेरी अनुपस्थिति नहीं
तुम्हारी अपनी सोच
अपनी उदासी होगी सिर्फ.
जानती हो न
मन की सतह पर
चीटियों सी रेंगतीं हैं ये उदासियां
हमारी समूची सोच को
एक ही बिंदु पर केंद्रित करती हुईं
अर्थहीन कर देतीं हैं
हमारा अस्तित्व.
सुनो!

"न होने" में भी
"होने" का जादू सीखना कभी.
जो पराग कणों सा हर ओर विकीर्ण होता
निर्वात में भी बिसरी धुन सा मद्धम गूंजता
जीवन पथ पर संतुलित गति से गति बढ़ाता
एक सार्थक अप्रतिम अहसास.
हां, इसलिए तो
ध्वनि के माध्यम से नहीं
तुम्हारे प्रकाश से दीप्त
तुमसे आंखों ही आंखों
सब अनकहा कह सुन लिया करता हूँ "मैं"
न न, "हम."

माइक्रोफ़ोन के अंदर भी होती है आंख

अनु चक्रवर्ती

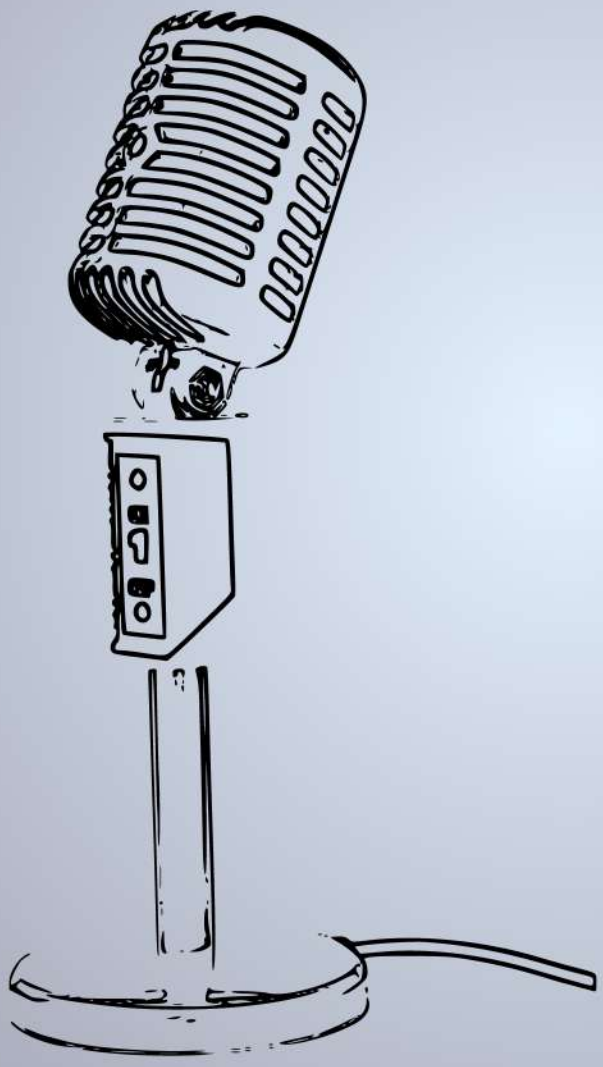

माइक्रोफ़ोन के अंदर भी होती है
एक जोड़ी आंख
जो भांप लेती है सहज ही
मन और कंठ के भीतर
आंदोलित हो रहे भावों को
बित्ते भर की दूरी से
अक़्सर नाप ली जाती है
सुनने वालों की धड़कनें
उनके हृदय में उमग रही क्लान्ति
और श्रव्यता की कलाएं
अनुभवजन्य निपुणता के बावजूद
अधीरता में छोड़ी एक सांस भर से
किरकिरा जाता है इसके समक्ष
सम्पूर्ण वैभव किसी संवाद का,
माइक्रोफ़ोन को पसंद है
इसके थोड़ा नज़दीक जाकर आहिस्ते से
पूरी तरह ईमानदार होकर बोलना
और स्वर के
आरोह व अवरोह के मध्य
गहराता संतुलन
बरस बीते एक अदृश्य दुनिया के साथ
संवाद क़ायम रखते हुए मैंने
अनुभूत किया है कई-कई बार
हर्ष, विषाद, वात्सल्य
उत्सुकता, उल्लास, ज्वर
हिम, वृष्टि, शीत, वायु
और जीवन-मरण को
उस पार के संसार में व्याप्त राग- रंग
अभिप्राय, चिंता और बेसब्री को
जानने बूझने के लिए यहां काफ़ी था
कल्पना और तरंगों के ज़रिए
मेरा एकल संवाद
माइक्रोफ़ोन के सम्पर्क में आते ही
सजग हो उठती है जिव्या
चैतन्य हो उठते हैं श्रवणेन्द्रिय
निखरने लगती है शिरोधरा
बहरहाल इसकी दृष्टि से बच पाने के
नहीं करने चाहिए कभी कोई कृत्रिम उपाय.

'स्वयं' होना

मालिनी गौतम

मुझे देवी कहकर
तुमने बहुत आसान बना लिया मुझे समझना
चुप रहूं तो 'संस्कारी'
बोल उठूं तो 'ज़्यादा ही आधुनिक'
तुमने मेरे लिए आरती के बोल रचे
पर मेरी आवाज़ से डरते रहे सदा
मेरे लिए उपवास रखे
लेकिन मेरी भूख से हमेशा असहज रहे
मैं वह दुर्गा हूं
जो तुम्हारे पांडालों से बाहर जन्म लेती है
किसी मूर्ति में नहीं
हर उस स्त्री में जो रोज़
अपने हिस्से की सुबह खुद रचती है
मेरे पास आठ हाथ नहीं
पर समय के हर कोने को थामे रखती हूं
चुप्पी में भी कह देती हूं वो
जो शब्दों में समा नहीं पाता
थककर भी चलती हूं
क्योंकि रुकना अब विकल्प नहीं रहा
तुम्हारी बनाई हुई सीमाएं
अब मुझे मार्ग दिखाने लगी हैं
तुम्हारे 'नहीं' अब 'संभव' की सीढ़ियां बन गए हैं.
तुम्हारे बनाए सांचे
अब मेरे हाथों की मिट्टी में ढलते है
मैं गुस्से में नहीं हूं
सिर्फ़ स्पष्ट हूं
मैं युद्ध नहीं चाहती
पर समर्पण भी अब मेरी भाषा नहीं है
दुर्गाष्टमी है आज
तो मैं खुद को प्रणाम करती हूं
उस स्त्री को जो हर दिन
देवी बनना नहीं
'स्वयं होना चुनती है'.

नर्मदा का नाभिकेंद्र - नेमावर

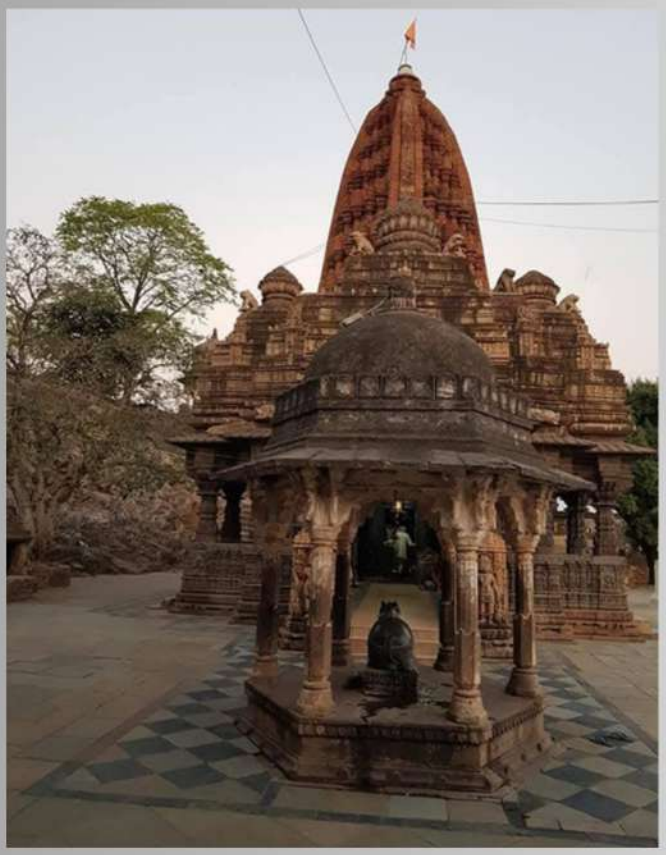

रूपेश उपाध्याय

नर्मदा परिपथ में नेमावर एक सुप्रशिद्ध तीर्थस्थान है. नर्मदा तट पर साधना के लिए यह शांत एवं सुरम्य स्थल माना जाता है. नेमावर नर्मदा का मध्यबिंदु होने से नर्मदा का नाभिकेंद्र कहलाता है. यह देवास जिला म.प्र. की खातेगांव तहसील अंतर्गत आता है. भोपाल से 158 किमी तथा इंदौर से 125 किमी की दूरी पर है. यह एक पौराणिक नगर माना जाता है.

महाभारत काल में यह नाभिपुर नाम का प्रमुख व्यापारिक नगर माना जाता था. दसवीं-ग्यारहवीं सदी में यह चंदेल और परमार वंश के राजाओं के अधीन रहा.

अकबर के शासनकाल में यह हंडिया सूवे के अंतर्गत एक महाल था. पेशवा के अधीन आने पर इसे सिंधिया और होलकर के मध्य विभाजित कर दिया गया.

यहां एक पहाड़ी पर स्थित सिद्ध नाथ मंदिर की ख्याति दूर दूर तक फैली है. इसे सभी पापों को नष्ट कर सिद्धता प्रदान करने वाला प्रमुख तीर्थ स्थान माना जाता है. कहा जाता है कि इसकी स्थापना सतयुग में ब्रह्मा जी के मानस पुत्र सनक, सनंदन, सनातन और सनत कुमार द्वारा की गई थी. सिद्ध नाथ मंदिर का शिखर 3094 वर्ष पुराना है.

कहते हैं कि द्वापर में कौरवों ने इस मंदिर का मुख्य द्वार पूर्व की ओर कर दिया था जिसे पांडवों द्वारा मोड़ कर पश्चिम की ओर कर दिया गया. इस मंदिर के गर्भगृह में भगवान सिद्ध नाथ की दुर्लभ प्रतिमा विराजमान है. इसके नीचे के तल पर महाकाल एवं इसके ऊपर के तल पर ओंकारेश्वर की प्रतिमा स्थापित है. परमार और चंदेल वश के शासकों ने समय-समय पर इस देवस्थान का जीर्णोद्धार कराया.

नेमावर में नर्मदा तट की रेत पर प्रातः काल पदचिन्ह दिखाई देते हैं. कहा जाता है कि ये पदचिन्ह इस पहाड़ी पर गुफाओं, कंदराओं में तप में लीन संत-महात्माओं के होते हैं जो प्रातः नर्मदा में स्नान करने आते हैं. यह मंदिर वास्तुकला का श्रेष्ठ उदाहरण है. यह अत्यंत पवित्र शांत और सुरम्य तीर्थ स्थल माना जाता है.

अलीना इतरत

(1)

अधूरी प्यास का चर्चा नहीं किया जाता.
ख़ुद अपनी ज़ात को रुस्वा नहीं किया जाता.

ज़रा चराग़ से कह दो के रोशनी बांटे,
नसीब क़ैद ज़िया का नहीं किया जाता.

शरीर लहरों से डर कर जो छोड़ दें पतवार,
सुपुर्द उन के सफ़ीना नहीं किया जाता.

बड़े अदब से मिले बे-अदब से लोग अक्सर,
अदब से ज़िक्र भी जिन का नहीं किया जाता.

नहीं है खेल में शामिल तो जा ख़ुदा हाफ़िज़,
के हम से भी ये तमाशा नहीं किया जाता.

"अलीना" दौलत- ए- दुनिया है ख़ाब अगर तुझ से,
दिल ओ ज़मीर का सौदा नहीं किया जाता.

(2)

जीत की और न हार की ज़िद है,
दिल को शायद क़रार की ज़िद है.

कोई भी तो नहीं त'अक़्क़ुब में,
जाने किस से फ़रार की ज़िद है.

हमसे कुछ कह रहें हैं सन्नाटे,
पर हमें इंतज़ार की ज़िद है.

इश्क़ चाहे के लब को जाम लिखे,
हुस्न को इंकिसार की ज़िद है.

बारहा हमने संगसार किया,
पर उसे ऐतबार की ज़िद है.

एक अंजाम ए तय शुदा के लिये,
फिर ख़िज़ाँ को बहार की ज़िद है.

उस से इक बार क्या मिलीं नज़रें,
दिल को अब बार-बार की ज़िद है.

मुमताज़ अज़ीज़ नाज़ां

(1)

उट्ठी जो आह दिल पे जमी बर्फ़ तोड़ कर.
शिरियानों से ले आई लहू तक निचोड़ कर.

क़िस्मत के ये शिगाफ़ भरे जाएं किस तरह,
देखा है उसके दर पे जबीं को भी फोड़ कर.

तेरे करम की आस में कब से हैं मुन्तज़िर,
आ सामने कि चूम लें कदमों को दौड़ कर.

रक्खा है बार-बार भरम इल्तेफ़ात का,
बिखरी हुई वजूद की किरचों को जोड़ कर.

जाने ये किसकी मात थी, किसको मिली सज़ा,
सायों से इंतेक़ाम लिया धूप ओढ़ कर.

इस रहबरी में क्या कहें कैसे थे मज़्मरात,
हम साथ-साथ चलते रहे मुंह को मोड़ कर.

इस तल्ख़ी-ए-हयात की शिद्दत न पूछिए,
"मुमताज़" रख दिया है कलेजा मरोड़ कर.

(2)

इस दर्द की शिद्दत से गुज़र क्यूं नहीं जाते.
बरहक़ है अगर मौत तो मर क्यूं नहीं जाते.

कब तक मैं संभालूं ये मेरी ज़ात के टुकड़े,
रेज़े ये हर इक सिम्त बिखर क्यूं नहीं जाते.

क़ातिल भी, गुनहगार भी, मुजरिम भी हमीं क्यूं
इल्ज़ाम किसी और के सर क्यूं नहीं जाते.

डरते हो तो अब तर्क-ए-इरादा भी तो कर लो,
हिम्मत है तो उस पार उतर क्यूं नहीं जाते.

अब दर्द की शिद्दत भी मेरा इम्तेहां क्यूं ले,
अब ज़ख़्म ये हालात के भर क्यूं नहीं जाते.

ये सर्द तमन्नाएं कहीं जान न ले लें,
एहसास के शोलों से गुज़र क्यूं नहीं जाते.

दिल फिर से मेरा उसका तमन्नाई हुआ है,
ये ज़ख़्म फिर इक बार उभर क्यूं नहीं जाते.

अब तर्क-ए-तअल्लुक़ ही मदावा है ग़मों का,
एहसान ये "मुमताज़" पे कर क्यूं नहीं जाते.

नफ़स अंबालवी

(1)

पहले समन्दरों में उतारा गया मुझे.
फिर प्यास की हदों से गुज़ारा गया मुझे.

देखा तो कुछ नहीं था वहां दश्त के सिवा,
फिर भी लगा कि जैसे पुकारा गया मुझे.

उम्र ए रवां ने पूछ लिया मुझसे एक दिन,
क्यूं बेदिली के साथ गुज़ारा गया मुझे.

पहले वो मेरी मौत पे ख़ुद मुतमइन हुआ,
फिर दार से ज़मीं पे उतारा गया मुझे.

बाज़ी को जीतने की हवस में बिसात पर,
अफ़सोस जान बूझ के हारा गया मुझे.

यूं ही मैं उसकी बज़्म से उठ कर नहीं गया,
दरअस्ल पहले उसका इशारा गया मुझे.

ज़िन्दा हूं इसलिए कि मैं उर्दू ज़बान हूं,
वरना हर इक मक़ाम पे मारा गया मुझे.

कुछ मैं भी तेज़गाम नहीं था कुछ ऐ 'नफ़स',
पुरख़ार रास्तों से गुज़ारा गया मुझे.

(2)

या इलाही ये मोजज़ा कर दे.
ज़र्द पत्तों को फिर हरा कर दे.

छीन ले ग़म के दौलतो-असबाब,
ज़िन्दगी मुझ को बेनवा कर दे.

फिर कोई दर्द कर अता मुझको,
फिर किसी ज़ख्म को हरा कर दे.

शाख़ से तोड़ कर मिटा दे मुझे,
और किसी हाथ की हिना कर दे.

मैं तिरी सिम्त इक सफ़र में हूं,
क़ुर्बतों को भी फासला कर दे.

ख़ुद से नाआशना हूं मैं अब तक,
आ मुझे ख़ुद से आशना कर दे.

आह पर बंदिशें न आयद कर,
मेरे ज़ख्मों की कुछ दवा कर दे.

रूह को कुछ सुकून दे मौला,
वरना इस जिस्म से रिहा कर दे.

अक्स दिखने लगे 'नफ़स' मुझ में,
मेरी हस्ती को आइना कर दे.

जावेद उल्फ़त

(1)

जीने की बीमारी से मर जाते हैं.
सब कितनी लाचारी से मर जाते हैं.

सांसें लेना कितनाआसां होता है,
फिर भी हम दुश्वारी से मर जाते हैं.

जिस को देखो साज़िश का इक हिस्सा है,
सब, सब की तैयारी से मर जाते हैं.

कुछ तो हम मर जाते हैं तेरे ग़म में,
कुछ तेरी ग़मख़्वारी से मर जाते हैं.

जीना यानी धीरे-धीरे मर जाना,
सारे बारी-बारी से मर जाते हैं.

हम शायर हैं आंखें खोल के जीते हैं,
हम अपनी बेदारी से मर जाते हैं.

(2)

दिल की तुरबत में कोई दर्द दबा है अब भी.
ऐसा लगता है कोई ज़ख़्म हरा है अब भी.

हर सितारे को तेरा नाम दे के कह दूंगा,
मेरी दुनिया का फ़क़त एक ख़ुदा है अब भी.

मुन्तज़िर हूं कि ये जीने की अमावस गुज़रे,
रात के सीने में इक चांद छुपा है अब भी.

बे मरासिम भी न वो ग़ैर हुआ मुझ से कभी,
मैं किसी और का हूं और वो मेरा है अब भी.

अपना दुश्मन ही बनाता है मुहब्बत का जुनून,
सरफ़रोशी की वही इश्क़ अदा है अब भी.

ख़ौफ़ ये है कि जुदाई के तो दुखड़े हैं हज़ार,
शुक्र ये है कि मुहब्बत में मज़ा है अब भी.

याद कर-कर के तुझे अब भी दुआ देता हूं,
भूलने वाले तेरी ये ही सज़ा है अब भी.

ज़िन्दगी, जां दे के इक रोज़ मना लूंगा तुझे,
इतना तड़पा के भी गर मुझ से ख़फ़ा है अब भी.

रश्क आता है मुझे रस्मे- वफ़ा पर "उल्फ़त",
बेवफ़ा होना यहां शर्ते- वफ़ा है अब भी.

कमलजीत चौधरी

1. श्रापग्रस्त

जब से रोते हुए के साथ
रोना,
हंसते हुए के साथ
हंसना,
गाते हुए के साथ
गाना,
नाचते हुए के साथ
नाचना,
और सभी को अपना समझना
छोड़ चुका हूं,
तब से मेरे होने का घेरा
छोटा होता जा रहा है
मेरी आंखों की नमी
ख़त्म होती जा रही है,
धीरे-धीरे
एक सिल-पत्थर बनता जा रहा हूं
जानता हूं
कि कोई राम मुझे
श्रापमुक्त करने नहीं आएगा,
मैं अपने न होने से श्रापग्रस्त हूं.

2. पेड़ और आदमी

ज़रूरी नहीं कि
जो बीज आप बोते हैं
वह अंकुरित हो ही,
पेड़ बनकर लहराए ही,
फल दे ही,
वह फलरहित भी रह सकता है
या उस पर कोई दूसरा आदमी
अपना कब्ज़ा भी जमा सकता है,
फिर पेड़ तो
पेड़ ही है
क्या वह बोल सकता है
मैं किसका हूं?
फिर उसका क्या दोष है,
अब आदमी भी कहां बोलता है
मैं किसका हूं?
और किसके कारण हूं?

(डोगरी के सुपरिचित कवि-लेखक-संपादक व रंगकर्मी मोहन सिंह की दो कविताएं ,कविता का हिंदी अनुवाद किया है कमलजीत चौधरी ने)

ओ ! नटखट गौरैया

श्याम सुंदर श्रीवास्तव 'कोमल'

ओ नटखट गौरैया मुझसे,
दूर-दूर क्यों रहती हो?
चीं- चीं- चीं- चीं करके मुझसे,
न जाने क्या कहती हो?

आ जा मेरे पास मटर के,
मीठे दाने खा जाओ,
फुदक-फुदक कर ओ गौरैया,
नाच मुझे दिखला जाओ.

तेरे पंख सुनहले कितने,
कोमल-कोमल प्यारे हैं,
मुझे बहुत अच्छे लगते
आंखों में बसे हमारे हैं.

रोज हमारे घर गौरैया,
उड़ कर तुम आया करना,
दाने खाकर पानी पीना,
आंखें मटकाया करना.

मुगल पसारना

पंकज चतुर्वेदी

मथुरा के चतुर्वेदी समाज में विवाह के समय एक रीति निभाई जाती है- उसे कहते हैं "मुगल पसारना". मथुरा के चतुर्वेदी बृज क्षेत्र के गांवों तक हैं, उससे लगे राजस्थान तक भी.

मान्यता है कि मुगलों ने मथुरा में चतुर्वेदियों पर अपनी परम्पराओं के निर्वहन के लिए कर लगा दिया था. इसे विशेष रूप से मथुरा के हिंदू पुजारियों, आमतौर पर चतुर्वेदियों पर लागू किया गया था. यह एक ऐसा कर था जो सभी गैर-मुस्लिमों को अपने गैर-मुस्लिम धार्मिक विश्वासों और जीवन शैली को जारी रखने के लिए देना पड़ता था. (उदाहरण के लिए एक चतुर्वेदी, कर का भुगतान करके अपने पारंपरिक धागे- जनेऊ और ब्राह्मणवादी चोटी को बरकरार रख सकता था, अन्यथा उनके सामने धर्म परिवर्तन या मृत्यु का विकल्प होता था.)

अब, चतुर्वेदियों के एक वर्ग ने शक्तिशाली मुगल साम्राज्य के साथ शांति बनाने और मथुरा कृष्ण मंदिर के पैतृक पुजारी के रूप में जारी रखने का विकल्प चुना . उन्होंने कर का भुगतान करना चुना और पीढ़ियों तक मथुरा में रहना जारी रखा.

एक अन्य वर्ग अधिक विद्रोही था और उसने एक आक्रमणकारी की अधिपत्य को स्वीकार करने से इनकार कर दिया. इन वर्गों ने एक कथित अन्यायपूर्ण और विदेशी प्रतिष्ठान के सामने विद्रोह करना चुना. विद्रोह को कुचलने के लिए औरंगजेब की सेनाओं द्वारा एक संगठित हमले का सामना करते हुए, विद्रोही पलायन कर गए और चंबल नदी के किनारे उन्होंने मुगलों के खिलाफ अपना संघर्ष जारी रखा, और इसलिए उन्हें खट्टा या "सोर" चतुर्वेदी कहा जाता था, यानी चतुर्वेदी जो विद्रोही बन गए.

कई बार, मुगलों ने इन बस्तियों पर आक्रमण करने की कोशिश की, या तो अधीनता या लूट के लिए, और विद्रोही गुरेल्ला युद्ध द्वारा खुद का बचाव करते थे. विवाह समारोहों के दौरान हमले काफी आम थे, जब मुगल लूट के लिए विवाह समारोहों पर छापा मारते थे और वे महिलाओं और दुल्हन का अपहरण करते थे, इसलिए ऐसे समारोहों में सशस्त्र संघर्ष आम बात थी.

कहा जाता है तभी से, आज भी, चतुर्वेदी समाज के लोग देर रात को अपने विवाह समारोह करते हैं, जो अन्य ब्राह्मण समूहों से अलग एक प्रथा है. "मुगल पसारना" नामक एक प्रथा भी दिलचस्प है जिसमें खड़िया से एक मानव आकृति उस जमीन पर बनाई जाती है जिस पर विवाह भोज आयोजित किया जाता है. चाक की आकृति सर्वोत्कृष्ट मुगल लुटेरों का प्रतिनिधित्व करती है जिन्हें विवाह भोज आयोजित करने से पहले बहादुरी से मारा जाना चाहिए था. अब इस आकृति पर तलवार फेरी जाती है.

अब यह एक मूक प्रथा मात्र रह गई है तथा दुर्भाग्यपूर्ण बड़े पैमाने पर संगठित हिंसा की याद दिलाती है, जिसके कारण चतुर्वेदियों का पलायन हुआ और वे मथुरा, आगरा, राजस्थान, चंबल आदि क्षेत्र में बिखर गए.

स्त्री जीवन के यथार्थ की प्रभावशाली अभिव्यक्ति

समीक्षक: दीपक गिरकर

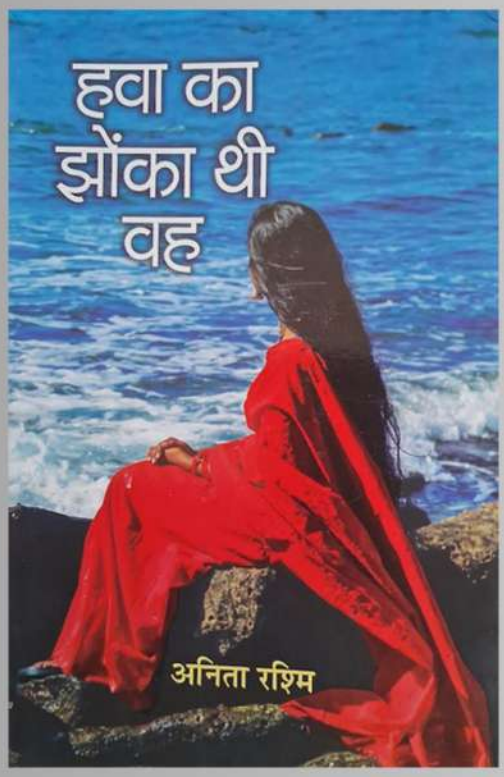

पुस्तक: हवा का झोंका थी वह (कहानी संग्रह)/ लेखिका: अनिता रश्मि / प्रकाशक: विद्या विहार, 19, संत विहार (पहली मंजिल), गली नंबर 2, अंसारी रोड, नई दिल्ली -110002 / आईएसबीएन नंबर : 978-81-960864-0-4 / मूल्य: 300 रूपए

समकालीन कथाकारों में अनिता रश्मि किसी परिचय की मोहताज़ नहीं है. "हवा का झोंका थी वह" अनिता रश्मि का छठा कहानी संग्रह है. इस संग्रह में 14 कहानियां संग्रहित हैं. इस संग्रह की कहानियों में स्त्रियों के जीवन की पीड़ा, उपेक्षा, क्षोभ, संघर्ष को रेखांकित किया है और साथ ही समाज की विद्रूपताओं को उजागर किया है.इन कहानियों का कैनवास काफ़ी विस्तृत है. ये कहानियां मध्यवर्गीय जीवन से लेकर निम्न वर्ग तक के जीवन की विडंबनाओं और छटपटाहटों को अपने में समेटे हुए हैं. इन कहानियों में यथार्थवादी जीवन, पारिवारिक रिश्तों के बीच का ताना-बाना, आर्थिक अभाव, पुरूष मानसिकता, स्त्री जीवन का कटु यथार्थ, बेबसी, शोषण, उत्पीड़न, स्त्री संघर्ष, स्त्रीमन की पीड़ा, स्त्रियों की मनोदशा, नारी के मानसिक आक्रोश आदि का चित्रण मिलता है.

इस संग्रह की कहानियां जिंदगी की हकीकत से रूबरू करवाती हैं. लेखिका अपने आसपास के परिवेश से चरित्र खोजती है. कहानियों के प्रत्येक पात्र की अपनी चारित्रिक विशेषता है, अपना परिवेश है जिसे लेखिका ने सफलतापूर्वक निरूपित किया है. अनिता रश्मि की कहानियों में सिर्फ पात्र ही नहीं समूचा परिवेश पाठक से मुखरित होता है.

संग्रह की पहली कहानी 'हवा का झोंका थी वह' नारी की संवेदनाओं को चित्रित करती आदिवासी स्त्री मीनवा की एक मर्मस्पर्शी, भावुक कहानी है जो विपरीत परिस्थितियों में भी हंसते मुस्कराते घरेलु नौकरानी का काम करती है. 'आंखें 'एक मध्यम वर्गीय परिवार की कहानी है। पायल और सुमंत लीव इन रिलेशनशिप में रहते हैं। पायल शादी इसलिए नहीं करना चाहती क्योंकि वह अपने माता-पिता को हमेशा लड़ते-झगड़ते हुए देखती है. 'शहनाई' कहानी संगीत की दुनिया में ले जाती है। निशांत अपने बेटे अंकुल की मृत्यु के पश्चात टूट जाता है और उसके हाथ से शहनाई छूट जाती है. फिर कैसे वह वापस लौटता है संगीत की दुनिया में इसके बारे में कहानी है ये. 'एक नौनिहाल का जन्म' एक आदिवासी युवक वृहस्पतिया की कहानी है जो अमीर बनने के लिए अपने सीधे-सादे पिता की ह्त्या कर देता है.

'उस घर के भीतर' एक ऐसे माता-पिता की कहानी है जो अपने अर्धविक्षिप्त, विकलांग बेटे को घर के अंदर बांध कर रखते है. 'किर्चें' एक लेडी डॉक्टर की कहानी है जिसका पति दहेज़ का लोभी है. वह अपनी पत्नी का वेतन स्वयं रख लेता है और अपनी पत्नी के द्वारा अपने ससुर से भी पैसे मांगता रहता है. 'एक उदास चिट्ठी' एक पत्र शैली में एक युवती द्वारा अपनी मां को लिखी कहानी है. यह एक भारतीय संस्कारों में पली-बढ़ी आधुनिक युवती के शोषण की कहानी है जिसे अपनी विदेशी मां से उपेक्षा मिलती है. 'लाल छप्पा साड़ी' गरीब आदिवासी स्त्री बुधनी की कहानी है. बुधनी रोज रात को डॉक्टर निशा के यहां पढ़ने के लिए जाती है. बुधनी का पति जीतना एक दिन जीतना शहर जाने के लिए निकलता है तो बुधनी उसे पैसे देकर अपने लिए लाल छप्पा साड़ी लाने के लिए कहती है क्योंकि बुधनी जहां काम करती है उस घर की मालकिन के पास भी एक लाल रंग की साड़ी है जो की बुधनी को बहुत पसंद है. फिर घटनाक्रम जो मोड़ लेता है

उसके माध्यम से कथाकार ने बुधनी की विवशता को दिखाकर स्त्री जीवन की नियति को दिखाया है.
'रस' एक स्कूल के मास्टर और उनकी पत्नी की कहानी है जिनका बेटा विदेश चला जाता है. कहानीकार ने एक मां की छटपटाहट को स्वाभाविक रूप से रेखांकित किया है. 'फैसला' रोड पर और गलियों में खेल-तमाशा दिखाने वाले एक गरीब व्यक्ति की कहानी है. लेखिका ने परिवेश के अनुरूप भाषा और दृश्यों के साथ कथा को कुछ इस तरह बुना है कि कथा खुद आंखों के आगे साकार होती चली जाती है. 'यह जीवन का कौन सा रंग है प्रभु' प्राकृतिक आपदा की कहानी है. 'चीखें...सन्नाटा!' एक युवा अमृत की कहानी है जिसकी मां की हत्या हो जाती है और बदला लेने के लिए वह एक अपराधी बन जाता है. 'बड़ी मां की गठरी' इस संग्रह की महत्वपूर्ण और मार्मिक कहानी है.

संग्रह की कहानियों में जीवन के विविध रंग हैं. कहानियों के पात्र अपनी जिंदगी की अनुभूतियों को सरलता से व्यक्त करते हैं. ये कहानियां एक साथ कई पारिवारिक और सामाजिक परतों को उधेड़ती हैं. सहज और स्पष्ट संवाद, घटनाओं, पात्रों और परिवेश का सजीव चित्रण इस संग्रह की कहानियों में दिखाई देता है. सभी कहानियां घटना प्रधान हैं. अनिता रश्मि की कहानियां पात्रों और परिवेश के माध्यम से आंतरिक संवेदना को झकझोरती हैं. कहानी संग्रह रोचक है और अपने परिवेश से पाठकों को अंत तक बांधे रखने में सक्षम है. अनिता रश्मि ने अपने कथा साहित्य में स्त्री की दोयम दर्जे की स्थिति को बेहद संवेदनशील तरीके से रेखांकित किया है, ये कहानियां कथ्य और अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टियों से पाठकीय चेतना पर अमिट प्रभाव छोड़ती है.

हिंदी त्रैमासिक
पहचान
देश से हम, हमसे देश

रचना आमंत्रण

अंतर्राष्ट्रीय, हिंदी त्रैमासिक ऑन लाइन पत्रिका ''पहचान'' हेतु आप भी रचनाएं भेज सकते हैं.

आलेख, समीक्षा, साक्षात्कार, शोध परक लेख, व्यंग्य, संस्मरण, यात्रा वृत्तांत, लोक साहित्य, बाल साहित्य, कविता, गीत, कहानी, लघु कथा आस्था, धरोहर, इतिहास, कला, विज्ञान, स्वास्थ्य आदि साहित्य की सभी विधाओं में रचनाओं का स्वागत है.

रचनाएं वर्ड फाइल में अपनी तस्वीर और परिचय सहित भेजें. लेख के लिए 800 से 1,000 और कहानी के लिए अधिकतम शब्द सीमा 1600 शब्द है.

यदि आप अपना खींचा कोई चित्र पत्रिका के कवर पेज या फिर तिमाही चित्र चयन के लिए विचारार्थ भेजना चाहें तो अपने परिचय के साथ चित्र के बारे में बताते हुए ई – मेल कर सकते हैं.

संपादक मंडल का निर्णय अंतिम निर्णय होगा, इसमें विवाद की गुंजाईश नहीं होगी.

editor@pehachaan.com